श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

वर्ष १८ | ज्येष्ठ, सम्वत् २०२९ जून, १९७२ | सं० १

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

सम्पादक—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० (मथुरा) उ० प्र०

सस्थापक—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
परमहंसस्वामी १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी
वर्तमान सभापति—आचार्य एवं नियामक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज
प्रचार संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघ—
[१] त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
[२] त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
[३] विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[४] पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम० ए०, पी-एच० डी०
[५] डा० श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[६] पण्डित वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
[७] पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
[८] पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
[९] पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम० ए०

कार्याध्यक्ष—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

वार्षिक भिक्षा ५) रु०

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृ. स०
१–श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि (जरासन्धवधान्तरं युधिष्ठिरस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्)	.... भगवान् श्रीश्रीमद्वेदव्यासजी	१
२–साधु-शिरोमनि रूप-सनातन [कविता]	.... (श्रीचैतन्य-पदावलीसे)	२
३–श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनकी सर्वश्रेष्ठता	.... जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर	३
४–प्रश्नोत्तर (मर्कट-वैराग्य)	.... जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	१०
५–प्रायश्चित्त	... (साप्ताहिक गौड़ीयसे अनुदित)	१३
६–परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवकी शुभाविर्भाव-तिथि पर....दो पुष्प-समर्पण	.... वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ	१८
७–धर्मका यथार्थ स्वरूप	.... श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी	१९
८–पत्रिकाका नव-वर्षमें पदार्पण	.... सम्पादक	२२

श्रीभागवत-पत्रिकाके १८वें वर्षकी

विषय-सूची

क्र०सं०	विषय	पं०सं०।पृ०सं०
१–	कुछ समस्याओंका समाधान	७।१४७
२–	कृष्णनामकी सर्वश्रेष्ठता	११।२६०
३–	कृष्णनागरसिक भक्तोंकी प्रार्थना	१२।२७३
४–	धर्मका यथार्थ स्वरूप	१। १९
५–	पतित-बन्धु भगवान् (पद)	११।२४४
६–	पत्रिकाका नव-वर्षमें पदार्पण	१। २२
७–	परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुदेवकी शुभाविर्भाव-तिथिपर.....दो पुष्प समर्पण	१। १८
८–	परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुदेवकी .....श्रीश्रीचरणकमलोंमें दीन-हीन सेवककी क्षुद्र पुष्पांजलि	२। ३८
९–	प्रचार-प्रसंग ... ... ४।८९, ५।११५, ६।१३७,	१०।२३७
१०–	प्रश्नोत्तर— [मर्कट-वैराग्य १।१०, योषित्-संग २।३६, प्रतिष्ठाशा एवं कुटिनाटि ३।६०, जीव-हिंसा ४।८३, अपराध	५ ।१०६
	वैष्णव-निन्दा ६।१३०, मनोधर्म एवं मायावाद	७ ।१५८
	पौत्तलिकता एवं समन्वयवाद ८।१७६, सभ्यता एवं राजनीति ९।२०३, समाज-नीति १०।२२९, जीवका अधिकार एवं दुःसंग-वर्जन ११।२६१ तथा भक्त्यानुकूल्य	१२।२७४
११–	प्रायश्चित्त	१। १३
१२–	विलंब छांड़ि हरि भजि लीजै (पद)	३। ५३
१३–	भक्तिकी महिमा (श्लोक)	८।१८३

१४– भगवत्सेवासे भक्त-सेवाकी श्रेष्ठता ५।१००
१५– भजनका शत्रु कौन है ? २। १९
१६– बंदौ चरण-सरोज तिहारे (पद) ३। ७२
१७– वर्ष-समाप्ति पर दो-एक शब्द १२।२८५
१८– वास्तव वस्तुका ज्ञान १०।२२०
१९– विज्ञानका यथार्थ स्वरूप ८।१८८
२०– श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षा ६।१२३
२१– श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनकी सर्वश्रेष्ठता २। २८
२२– श्रीनवद्वीप-परिक्रमा एवं श्रीगौर-जन्मोत्सव ११।२६४
२३– श्रीबलदेव प्रभुका तत्त्व ३। ५४
२४– श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि— [जरासन्ध-वधानन्तरं श्रीयुधिष्ठिरस्य १। १
मुनीन्द्रगणकृतं २।२५, श्रीवसुदेवकृतं ३।४९, श्रीदेवकीदेवीकृतं ४। ७३
श्रीबलिराजकृतं ५।९७, श्रीबहुलाश्वकृतं ६।१२१, श्रीश्रुतदेवकृतं ७।१४५
श्रीश्रुतिगणकृतं ८।१६९, ९।१९३, १०।२१७, एवं ११।२४१, श्रीशुकदेव
गोस्वामीकृतं १२।२६५
२५– भगवत्संबन्धराहित्यकी विफलता (श्लोक) ७।१५७
२६– भगवानका भक्त-वात्सल्य (श्लोक) ७।१६२
२७– श्रीमन्महाप्रभुके आगमनका विशेष कारण ९।१९६
२८– श्रीश्रीचैतन्य-शिक्षामृत ४।९२, ५।११७, ६।१४५, ७।१६६, ८।१८४, ९।२०९, १२।२८३
२९– श्रीश्रीराधाष्टमीका माहात्म्य ४। ७५
३०– श्रीश्रीलप्रभुपाद एवं माननीय श्रीचेट्टियार ११।२४५
३१– सन्दर्भ-सार—[भक्तिसन्दर्भ ३।६९, ४।८५, ५।११०, ६।१३३, ७।१६३, ८।१७९
९।२०५, १०।२३३ एवं १२।२७८
३२– साधुसंग २। ४२
३३– स्वाधीनता १०।२३९
३४– हमारा यथार्थ प्रयोजन क्या है ? ८।१७२
३५– साधु-शिरोमणि रूप-सनातन (पद) १। २
३६– हरिनाममें रुचि कैसे हो ? १२।२६७
३७– हरिभक्तिका जीना ही सार्थक है (श्लोक) ५।११४
३८ हरिभक्तका महान् प्रताप (पद) ५। ९९
३९ हरिभक्तकी महिमा (श्लोक) ५।१०५

● समाप्त ●

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है भक्ति अधोक्षजकी — वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर । अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास—त्रिविक्रम १७, वार—अनिरुद्ध, बुधवार, ३१ ज्येष्ठ, सम्वत् २०२९, १४ जून, १९७२ | संख्या १

जून १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

जरासन्धवधानन्तरं युधिष्ठिरस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।७४।२-५)

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकाः महेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥

जरासन्धके वध एवं श्रीकृष्णके अलौकिक प्रभावको सुनकर प्रसन्नचित्त होकर राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उन भगवान्‌की स्तुति करने लगे—

हे देव ! सनक, सनातन आदि तीनों लोकोंके गुरु-वृन्द एवं सभी लोकपालोंके साथ समस्त लोकसमूह आपके दुर्लभ आदेशको भाग्यक्रमसे प्राप्त होनेपर उसे अवनत मस्तक होकर ग्रहण किया करते हैं ॥ २ ॥

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

हे भूमन् ! ऐसे परमेश्वर होकर भी कमललोचन आप ईश्वराभिमानग्रस्त, वस्तुतः अत्यन्त दीनभावापन्न हम जैसे क्षुद्र व्यक्तियोंका आदेश पालन कर रहे हैं, यह हमारी अत्यन्त विडम्बना एवं आपका नरलीला-अनुकरण मात्र है ॥ ३ ॥

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
कर्मभिर्वर्द्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

हे देव ! उदय अथवा अस्तगमन द्वारा जिस प्रकार वस्तुतः सूर्यतेजकी वृद्धि या ह्रास नहीं होता, उसी प्रकार परानुग्रहके लिए ऐसे कर्मसमूहद्वारा एक, अद्वितीय, सर्वनियन्ता, ब्रह्मरूपी आपके प्रभावकी भी वृद्धि या ह्रास नहीं होता ॥ ४ ॥

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।
त्वां तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृती ॥ ५ ॥

हे अजित ! हे माधव ! अज्ञ व्यक्तियोंकी जिस प्रकार शरीरविषयमें विविध भेदबुद्धि वर्त्तमान है, आपके सेवकोंमें इस प्रकार की 'मैं-मेरी', 'तुम-तुम्हारी' रूपी भेदबुद्धि कदापि वर्त्तमान नहीं है ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीयुधिष्ठिरस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति श्रीयुधिष्ठिरका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ।

—※—

साधु-सिरोमनि रूप सनातन

साधु-सिरोमनि रूप सनातन ।
जिनकी भक्ति एक रस निबही, प्रीति कृष्ण राधा तन ॥
जाको काज सँवार्‌यो चित दै, हित कीनो छिन तातन ।
जाके विषय बासना देखी, मनसा करी न बातन ॥
वृन्दावनकी सहज माधुरी, रोम रोम सुख गातन ।
सब तजि कुंज केलि भज अहनिसि आत अनुराग सदा तन ॥
तृनहु तें नीचे तरुहुं ते सहकर, आमानि मान सुहातन ।
असिधारा व्रत और निबाह्यौ, तिन मन कृष्ण कथा तन ॥
करुणासिन्धु कृष्णचैतन्यकी, कृपा फली बुहुं भ्रातन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भये सब सेवत सूखे पातन ॥

श्रीकृष्ण-संकीर्तनकी सर्वश्रेष्ठता

श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी वाणी उनके हृदयमें ही प्रकाशित होती है, जो व्यक्ति भगवान श्रीकृष्णचैतन्यदेवके प्रकाशविग्रह श्रीगुरुदेवके प्रति पराभक्ति विशिष्ट हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी वाणीसे हम जो शिक्षाएँ प्राप्त करते हैं, वे शिक्षाएँ केवल किसी देश-विशेषमें ही आबद्ध रहेंगी, या केवल भारतवर्षमें ही प्रचारित होंगी, ऐसी बात नहीं है। विश्वमें सर्वत्र ही उनकी वाणीका विस्तार होगा। श्रीचैतन्यदेवकी वाणी किसी देश, काल या पात्रके संकीर्ण घेरेमें आबद्ध रहनेवाली वस्तु नहीं है। वह सभी स्थानोंमें, सभी कालोंमें, सभी पात्रोंमें समान रूपसे विस्तारित होनेकी पूर्ण योग्यता से परिपूर्ण है।

मैं यह नहीं कह सकता कि उनकी वाणी को कहाँ तक आपके निकट व्यक्त करनेमें मैं समर्थ होऊँगा। किन्तु उनकी वाणी, आप लोगोंकी विकसित चेतन-वृत्तिमें प्रकाशित होनेपर आप लोग निश्चय ही श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाके वैशिष्ट्य एवं असमोर्द्ध्व दर्शन कर चमत्कृत होंगे।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने कहा है कि जो लोग पारमार्थिक जीवनकी योग्यताके लिए निष्कपट रूपसे अनुसन्धान करते हैं, उनके लिए श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन ही एकमात्र परम उपाय है। श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन द्वारा परमार्थ-जीवन-यापन की सर्वश्रेष्ठ योग्यता प्राप्त होती है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी श्रीमुख-निःसृत वाणी इस प्रकार है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ॥

भगवद्भक्तिके जितने प्रकारके अंग हैं, उनमें से श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन ही एकमात्र प्रधानतम एवं परम प्रयोजनीय अंग है। श्रीकृष्णनाम की सेवा यथार्थ रूपसे एवं सम्यक् प्रकारसे साधन करनेकी इच्छा हो, तो हमें श्रीनामपरायण महाजनोंका पदांकानुसरण करना आवश्यक है।

श्रीकृष्णनाममें सभी वस्तुएँ ही परिपूर्ण-रूपसे वर्त्तमान हैं—श्रीकृष्णनाममें सर्वशक्ति, सर्वशोभा, सर्व आकांक्षाकी परिस्फूर्त्ति एवं सभी साधनोंका चरम फल और सिद्धि वर्त्तमान हैं। श्रीकृष्णके स्वरूप, श्रीकृष्णके रूप, गुण, परिकर, धाम, लीला आदिके साथ श्रीकृष्णका नाम सब प्रकारसे अभिन्न है। श्रीकृष्णकी नाम-सेवा द्वारा ही उनके स्वरूप, रूप, गुण, लीला, परिकर—सभी विषय जीव की चेतन-वृत्तिमें प्रकाशित होते हैं। अप्राकृत श्रीनाम ही नामी, रूपी, गुणी, लीलामय रूपसे आत्मप्रकाश करते हैं। श्रीकृष्णका सर्वश्रेष्ठ कार्य श्रीकृष्णकी नाम-सेवा द्वारा ही परिपूर्ण हो सकता है।

श्रीकृष्णनाम द्वारा ही हमारे सभी क्रियाभिनिवेश, समस्त प्रवृत्ति, समस्त चिन्ता,

समस्त धारणा आदि सभी नियमित होते हैं। श्रीकृष्णके नाम हमारे जिह्वाग्रमें उदित होने पर हम नश्वर जगत्के समस्त कृत्य, कर्त्तव्य-बुद्धि, नश्वर जगतको भोग करनेकी प्रवृत्ति एवं हमारी पारिपार्श्विक सुविधा-असुविधा आदि समस्त ही अनायाससे परित्याग कर सकेंगे। हम उस समय अपनी निखिल चेष्टाओं को श्रीकृष्णकी काम-सेवामें नियुक्त कर श्रीकृष्णके अप्राकृत नाम-श्रवण और कीर्त्तन करते-करते जीवन यापन कर सकेंगे।

कृष्णेतर वस्तुके नाम या जागतिक आभिधानिक शब्द-समूह हमारे सन्मुख हमारे नित्यानन्द लाभके पथमें जो सभी अर्गल (रुकावटें) ला खड़ा करते हैं, श्रीकृष्ण-नामसे वे सभी रुकावटें भी अनायास ही दूर हो जाती हैं। वे ही श्रीकृष्णनाम हमारे सभी क्रिया-कलाप, निखिल चेष्टाएँ, सब प्रकारके अभिनिवेश, अध्यवसाय सभीके ऊपर जय प्राप्त करें। सभी साधनोंके शिरोदेशमें श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन नृत्य करते हैं। श्रीकृष्णनाम केवल साधनमात्र नहीं हैं, वे साधनोंके फल साध्यवस्तु भी हैं। इसीलिए जिन लोगों की सर्वप्रकारकी जागतिक तृष्णाएँ परिपूर्ण रूपसे निवृत्त हो गई हैं, वे सभी महामुक्त महापुरुष लोग भी एकायन पद्धति द्वारा इन श्रीकृष्णनामकी ही निरन्तर उपासना करते हैं। समस्त वेदके शिरोभाग और सारभागरूप श्रुतिसमूह भी श्रीकृष्णनाम-प्रभु की नखशोभा की निरन्तर आरति करते रहते हैं। हमारे पूर्वाचार्य श्रील सनातन गोस्वामीपादने भी यह प्रमाण उद्धार कर कहा है—

येन जन्मशतैः पूर्वं वासुदेवः समर्चितः।
तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारत॥

जो व्यक्ति सैकड़ों पूर्व जन्मोंमें सम्यक रूपसे वासुदेवका अर्चन किये हैं, वर्त्तमान जन्ममें उनके मुखमें ही श्रीहरिके नामसमूह अनुक्षण नृत्य करते रहते हैं।

श्रीसम्प्रदायके व्यक्ति जिस अर्चनकी बातको परमादरके साथ ग्रहण करते हैं, उस प्रकारका वासुदेवका अर्चन सैकड़ों जन्मोंमें करनेके पश्चात् श्रीकृष्णचैतन्यदेवके दासानु-दासोंके मुखसे श्रीकृष्णनाम श्रवण कर सर्व-क्षण उसके कीर्त्तनमें आसक्ति होती है। श्रील सनातन प्रभुने और भी कहा है—

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-
विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम्।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्
परममृतमेकं जीवनं भूषणं मे॥

जिस श्रीकृष्णनामकी सेवासे वर्णाश्रमादि स्वधर्म-याजन, ध्यान, पूजादि चेष्टाएँ सहज ही निवृत्त हो जाती हैं, इस प्रकारके अप्राकृत आनन्दकन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके नाम पुनः पुनः जययुक्त हों। इन नामको जिस किसी प्रकारसे ग्रहण करनेपर ही अर्थात् नामाभास मात्रसे ही वे मुक्तिदान किया करते हैं। श्रीकृष्णनाम ही एकमात्र अमृत-स्वरूप हैं एवं वे ही जीवोंके जीवन एवं चेतनके परम भूषण हैं।

हमारे पूर्वाचार्य श्रील रूप गोस्वामीपादने भी कहा है—

यद्ब्रह्म साक्षात्कृतिनिष्ठयापि
विनाशमायाति विना न भोगैः।
अपैति नामस्फुरणेन तत्ते
प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः॥

अविच्छिन्न तैलधाराके तुल्य ब्रह्मध्यानसे प्राप्त ब्रह्म-साक्षात्कार द्वारा भी जो प्रारब्धकर्म भोगके बिना विनष्ट नहीं होते, किन्तु श्रीकृष्णनामके आभासमात्रसे ही वे सभी प्रारब्धकर्म अनायास ही अपने मूल अविद्याके सहित विनष्ट हो जाते हैं । यही बात वेदोंने पुनः पुनः उच्च स्वरसे कीर्त्तन किया है ।

अतएव श्रीकृष्णनामका ही बारम्बार उच्चारण करना होगा । उन श्रीकृष्णनामका ऐसा ही स्वभाव है कि कानोंमें एकबार उनके प्रवेश होनेपर वे जीवों की जिह्वाको द्वार बनाकर स्वयं अपनेको बारम्बार आवृत्ति कराते हैं । श्रीकृष्णनामकी आवृत्ति द्वारा हम सात प्रकारके फल प्राप्त करते हैं ।

हमारा चित्त दर्पणकी तरह स्वच्छ एवं वस्तु-प्रतिफलनकी योग्यतासे युक्त होनेपर भी वर्त्तमान अवस्थामें जागतिक असंख्य आगन्तुक कामनाओंने धूलिकणोंकी तरह उसे आवृत कर रखा है । हम अपने चित्तदर्पणमें अविकृत नित्यवस्तुका दर्शन नहीं पा रहे हैं । हमारे चित्तको सम्पूर्णरूपसे मार्जन करनेकी आवश्यकता हो पड़ी है । इस मार्जन-कार्यके लिए किसी-किसीने अष्टांग-योगादिकी प्रणाली अवलम्बन करनेका परामर्श दिया है, और किसीने प्रायश्चित्तादि कर्म-प्रणालीकी व्यवस्था दी है, दूसरे किसीने नानाप्रकारके कठिनसाध्य व्रत-तप आदि की तथा तीसरे किसीने ज्ञान-चर्चा आदिके द्वारा चित्त की धूलिराशि दूर करनेका उपाय ग्रहण करनेके लिए कहा है । किन्तु जो व्यक्ति सहिष्णु एवं निरपेक्ष होकर विचार कर सकते हैं, उन लोगोंने यह दिखलाया है कि ये सभी प्रणालियाँ कृत्रिमता एवं असम्पूर्णता दोषसे परिपूर्ण हैं । चेतनके दर्पणको मार्जन करनेका या चेतन तक पहुँचनेका सामर्थ्य इन सभी कृत्रिम साधन-प्रणालियोंमें से किसीकी भी नहीं है । प्राणायामादिके द्वारा चित्तको निर्मल करनेकी प्रणालीमें चित्त विषय-मलशून्य नहीं होता । केवल तात्कालिक शुद्धभाव मात्र प्रकाशित होता है । इसलिए इस प्रकार चित्त बहुत कष्ट, कठिनाई आदिके द्वारा तात्कालिक शुद्धभाव अवलम्बन करने पर भी पुनः किसी कारणसे थोड़ा सा विक्षुब्ध होनेसे ही समस्त रोग और भी द्विगुणतर वेगसे प्रतिक्रिया आरम्भ करते हैं । ये सभी उपाय केवल वृथा कालक्षेपण करनेके कारण मात्र हैं । इनके द्वारा चित्तके मल तिरोहित या विदूरित नहीं हो सकते । यह बात श्रीमद्भागवतमें असंख्य स्थानोंमें असंख्य प्रकारसे कीर्त्तन की गई है—

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत् तथाद्धात्मा न शाम्यति ॥
(भा० १ । ६ । ३६)

अर्थात् मुकुन्द-सेवाद्वारा, सदा काम-लोभादि शत्रुओंके वशीभूत अशान्त मन जिस प्रकार साक्षात् रूपसे दमन प्राप्त करता है, यम-नियमादि अष्टांग-योगमार्ग अवलम्बनद्वारा उस प्रकार वह निरुद्ध या शान्त नहीं होता ।

श्रीकृष्णनामके आभाससे ही अनायासमें चित्तदर्पणकी समस्त मलिनता विनष्ट हो जाती है । जो सभी आगन्तुक आवरण हमारे स्वरूपके ऊपर आ पड़े हैं, उनको दूर करनेमें एकमात्र श्रीकृष्णनाम का आभास ही सर्व-शक्ति-सम्पन्न है ।

स्वरूप-निर्णयका प्रश्न धर्मजगतमें एक समस्यापूर्ण प्रश्नके रूपमें ग्रहण किया गया है । किन्तु श्रीकृष्णचैतन्यदेवने समस्त

समस्याओंकी प्रहेलिका एवं विभीषिकाको दूर कर इस प्रश्नकी सर्वोच्च एवं चरम मीमांसा कर दी है। उन्होंने कहा है कि स्वरूप-निर्णय करने पर सभी ही 'कृष्णदास' हैं। अप्राकृत श्रीकृष्णनामके कीर्त्तनद्वारा अप्राकृत कामदेव कृष्णकी अप्राकृत कामनाकी सेवा-पूर्त्ति ही ऐसे स्वरूप-निर्णयका फल है। कृष्णनाम-संकीर्त्तनद्वारा चित्तदर्पणके सम्पूर्ण रूपसे निर्मल हो जाने पर जीवोंमें इस प्रकारके चेतनस्वरूपका विकाश होता है।

इस जगतमें हमने जो कटु अभिज्ञता प्राप्त की है, उसके कारण हम सभी ही न्यूनाधिक इस कटु अभिज्ञताके हाथसे मुक्त होनेके लिए किसी न किसी रूपसे व्यग्र हैं। जगतके त्रिविध क्लेशसे हरिविमुख जीवमात्र ही सर्वदा तप्त हो रहे हैं। आध्यात्मिक, आधि-भौतिक और आधिभौतिक क्लेशोंके कवलसे मुक्त करनेके लिए ईश्वरकृष्ण और पतंजलि आदि तथाकथित व्यक्तियोंने जो व्यवस्था दी है, उसके द्वारा जीवोंके चेतनता-विनाशकी ही व्यवस्था हुई है। चेतनता-विनाशकी तरह सर्वापेक्षा अनन्त, निष्ठुर दण्ड, भीषण क्लेश और क्या हो सकता है? चेतनताके विनाश होने पर जीवोंका जीवत्व ध्वंस हो गया। चेतनता ही स्वाधीनताका मूल है। चेतनता विनष्ट होने पर स्वाधीनताका भी बलिदान करना हुआ। किन्तु श्रीकृष्णचैतन्यदेवने जीवोंकी चेतनता या स्वाधीनताके विनाशकी व्यवस्था नहीं की है।

उन्होंने जीवोंके क्लेश-मोचनके नामसे सर्वापेक्षा क्रूरतापूर्ण क्लेशमें एवं निष्ठुरतम दण्डमें दण्डित करनेके लिए कपटताका प्रदर्शन नहीं किया। उन्होंने कहा है—जीव पूर्ण-चेतन श्रीकृष्णके विभिन्नांश हैं। जीवोंकी नित्यसत्ता, नित्यचेतनता, नित्य आनन्द-सम्पद् आदि सर्वदा वर्त्तमान हैं। जीव श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनमें अभिषिक्त होने पर उसकी नित्य सत्ता, नित्य चेतनता एवं नित्य आनन्दका परिपूर्ण विकाश नवनवायमान रूपसे साधित हो सकता है। दूसरे उपायसे जीवोंकी चेतनता एवं स्वाधीनता स्तब्ध एवं विनष्ट ही हो जाते हैं। श्रीकृष्णनामके आभास द्वारा ही आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक त्रिताप शीघ्र ही एवं अनायास ही समूल विनष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्णनाम-कीर्त्तनकारी व्यक्ति ही विश्वको नित्य और पूर्ण सुखके आगाररूपसे अनुभव एवं दर्शन कर सकते हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनके आभाससे ही महादावाग्नि तुल्य यह संसारानल निर्वापित हो सकता है। दूसरे-दूसरे सभी अभक्ति-उपायके आश्रयसे भवमहादावाग्नि किसी भी प्रकारसे निर्वापित या शान्त नहीं हो सकती। बल्कि किसी न किसी प्रकारसे लुप्त तुषाग्निकी तरह भीतर दह्यमान रहकर परिणाममें जीवोंका सर्वनाश करवाते हैं।

श्रीकृष्णनामसे समस्त प्रकारके श्रेयः या मंगल प्रस्फुटित होते हैं। हम श्रुतियोंमें 'श्रेयः' और 'प्रेयः'—ये दो शब्द देख पाते हैं। जिस कार्यमें हमारा इन्द्रियतर्पण वर्त्तमान है एवं श्रीकृष्णेन्द्रिय-तर्पण वर्त्तमान नहीं है, वही 'प्रेयः' है एवं जिस कार्यमें श्रीकृष्णेन्द्रिय-तर्पणताकी परिपूर्णता तथा मेरी बहिर्मुखता की तात्कालिक अप्रियता है, वही 'श्रेयः' है। जिन व्यक्तियोंके 'श्रेयः' और 'प्रेयः' पृथक् नहीं हैं, वे ही मुक्त हैं। उनकी जिह्वामें ही श्रीकृष्णनाम निरन्तर नृत्य करते रहते हैं।

श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनको छोड़कर उनका पृथक् कोई प्रेयः एवं श्रेयः विचार नहीं है।

हमें वास्तव सुख द्वारा ही समृद्ध होना उचित है। जगतमें जिस कल्पित सुख का सन्धान किया जाता है, उसमें केवल क्लेशकी तीव्रताको तात्कालिक रूपसे प्रशमन या ह्रास करनेकी चेष्टाको छोड़कर और कुछ भी नहीं है। किन्तु केवल कष्टका तात्कालिक मोचन या कष्टकी तीव्रता का लघुकरण वास्तव सुखका स्वरूप नहीं हो सकता। यथार्थ सुख अवसान-रहित, अपरिवर्त्तनीय एवं आवरण-रहित तथा विशुद्ध है।

श्रीकृष्णनाम श्रेयःकुमुद-विकाशक ज्योत्स्ना प्रदान करते हैं। तीव्र सूर्यालोकसे कुमुदकी कोमलता विनष्ट हो जाती है। विशेषकर सूर्यकी तीव्र किरणें आँखोंको पीड़ा प्रदान करती हैं। किन्तु चन्द्रकी ज्योत्स्ना कुमुदके विकाशके लिए अनुकूल एवं इन्द्रियोंके लिए स्निग्धकारी है। श्रेयःकुमुद इतर तीव्रसाधन-प्रणालीद्वारा मलिन हो पड़ता है। किन्तु श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन की स्निग्ध चन्द्रिकाका जिस प्रकार परम अनुकूल सम्बन्ध है, वैसा सम्बन्ध श्रेयः के साथ दूसरे साधन-प्रणालीका नहीं है। इसलिए श्रेयः कैरव-चन्द्रिका शब्दका उल्लेख है। यद्यपि हमें आलोक या प्रकाशका प्रयोजन है, तथापि तीव्र प्रकाश या ताप का प्रयोजन नहीं है। अनुकूल स्निग्ध प्रकाशका ही प्रयोजन है। दूसरी साधन प्रणालियाँ आलोक-प्रदानकी छलनायुक्त या हरिसेवाविमुख कठिनसाध्यताके तीव्रतापसे युक्त हैं। उससे श्रेयःकुमुदका कदापि विकाश नहीं होता। परन्तु श्रेयः और भी लुप्त हो पड़ता है।

श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन विद्यावधूका जीवन-स्वरूप है। हम ज्ञानार्जन करनेके लिए आकांक्षा-विशिष्ट हैं। अभिज्ञताकी प्रणाली जागतिक ज्ञानार्जनके लिए सेतुस्वरूप है, किन्तु अभिज्ञताकी यह प्रणाली असम्पूर्ण एवं नाना प्रकारके दोषोंसे पूर्ण है। अभिज्ञताकी प्रणालीद्वारा हम जो ज्ञानार्जन करते हैं, वह चिरस्थायी फल प्रसव नहीं कर सकता। जब हमारी इन्द्रियाँ पक्षाघातग्रस्त होती हैं, उस समय हमारे द्वारा प्राप्त प्रचुर ज्ञान-भण्डार हमारे आयत्तमें नहीं रहता। अभिज्ञताकी प्रणाली कुछ काल पश्चात् ही असम्पूर्णता दोषसे पूर्णयुक्त जान पड़ती है। अभिज्ञताकी प्रणाली अवलम्बन कर अर्द्ध-शताब्दीके साधनके पश्चात् हम जो ज्ञान अर्जन करते हैं, वह ज्ञान-भण्डार शताब्दीकी साधनाके पश्चात् असम्पूर्ण एवं भ्रमात्मक दीख पड़ता है। किन्तु अपरिवर्त्तनीय और सम्पूर्ण ज्ञान-भण्डार का संग्रह ही सुबुद्धिमान व्यक्तियोंका काम्य है। जब हमारे स्वरूपका निर्णय होता है, तब हम यह उपलब्धि कर सकते हैं कि जागतिक अभिज्ञताद्वारा संग्रहीत एवं संचित सैकड़ों शताब्दियोंका ज्ञान-भण्डार कितना दरिद्र, असम्पूर्ण एवं भ्रमात्मक है। ये सभी असम्पूर्ण ज्ञानद्वारा हमारा कोई तात्कालिक प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, किन्तु वे कदापि हमारी नित्य आकांक्षा या नित्य मंगल-साधनमें समर्थ नहीं हैं। यद्यपि हम केवल वर्त्तमान अवस्थाकी तात्कालिक आवश्यकता को ही बड़ा समझें एवं उसके परिपूरण करने में ही लगे रहें, तो क्या हमें 'मनुष्य' कहकर पुकारना उचित है? हमें नित्य प्रयोजनके लिए मनोयोगी बनना होगा। हम अपनी सारी शक्ति, चेष्टा, सामर्थ्य, योग्यता—नित्यप्रयोजन की परिपूर्त्तिके कार्यमें ही नियुक्त करेंगे।

हमारी चेतन-विकाश-चेष्टाको छोड़कर दूसरी सभी चेष्टाएँ नश्वर हैं। वे कुछ समयके लिए हमारी दृष्टिके सामने उपस्थित होकर थोड़े से समयमें ही आत्मगोपन करती हैं।

श्रुतियाँ इन चेष्टाओंको 'अपरा विद्या' कहती हैं। आत्माकी अप्रतिहता या साक्षात् आकांक्षामयी वृत्ति ही 'पराविद्या' है। वही पराविद्या समस्त सद्ज्ञानकी जननी है। श्रीकृष्णसंकीर्त्तन उस पराविद्याका जीवातु स्वरूप है। पूर्णज्ञान एकमात्र श्रीकृष्णसंकीर्त्तनद्वारा प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-नाम पूर्णतम सम्वित्-विग्रह हैं। अतएव ब्रह्मज्ञान, परमात्म-ज्ञान, वासुदेव-ज्ञान, लक्ष्मीनारायण-ज्ञान, कारणार्णवशायी, गर्भो-दकशायी तथा क्षीरोदकशायीका ज्ञान, वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धका ज्ञान, राम-नृसिंहादि अवतारका ज्ञान, वैकुण्ठ एवं गोलोकका समस्त ज्ञान श्रीकृष्णनाममें ही अनुस्युत है।

श्रीकृष्णनामको छोड़कर दूसरे शब्द इतरव्योममें विचरण कर जीवोंके निकट आवृत-ज्ञान प्रकाश कर रहे हैं। ये सभी शब्द हमारे कानोंको छोड़कर आँख, जिह्वा, नासिका और त्वचा—इन चार परीक्षकोंकी परीक्षाके पात्रत्वमें परिणत हुए हैं। इतर-व्योमसे जब ही कोई शब्द आता है, तब ही ये चारों परीक्षक उस शब्दकी सत्यता निरूपण करनेमें नियुक्त रहते हैं। किन्तु परव्योमगत शब्द इन सभी परीक्षकोंके अधीन नहीं हैं। उनकी व्यक्तिगत ऐसी एक स्वतन्त्रता है, जो उन शब्दोंकी सर्वप्रकारसे रक्षा कर शब्द-श्रवणकारीकी समस्त इन्द्रियों को नियमित कर सकती है। इतरव्योमके शब्द दूसरोंके भोगके लिए कल्पित हैं। किन्तु परव्योमके शब्द स्वयं-भोक्ता और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र तथा परिपूर्ण शक्तिमान हैं। वह वैकुण्ठ-शब्दोच्चारण ही कृष्ण संकीर्त्तन है, वह कृष्णेतर संकीर्त्तन नहीं है।

श्रीकृष्णनाम पूर्णज्ञान, पूर्णसत् और पूर्णानन्दस्वरूप है। अतएव हम श्रीकृष्णनाम के साथ जड़जगतकी मलिनता मिलानेकी चेष्टा प्रदर्शन नहीं करेंगे। कृष्णनामके प्रभुत्व का वैशिष्ट्य हमारे समस्त ज्ञानके आकर-समूहके ऊपर प्रभुत्व विस्तार करेगा। हमारी इन्द्रियोंसे अतीत जो सभी ज्ञान-विज्ञान है, उसमें हमारी इन्द्रियोंका प्रवेशाधिकार नहीं है। श्रीकृष्णसंकीर्त्तनको छोड़कर दूसरी-दूसरी साधन-प्रणालियाँ आरोहवादकी अहमिका (अहंकार) की भित्ति (आधार) पर प्रतिष्ठित हैं। किन्तु अधोक्षज वस्तुके समीपमें उपस्थित होनेकी प्रणाली एकमात्र श्रीनाम-संकीर्त्तनमें ही प्रतिष्ठित है।

जड़मिश्र शब्द कदापि हमें अधोक्षज वस्तुके निकट नहीं ले जा सकते। जब जड़मिश्र शब्दके साथ अविमिश्रपूर्ण सच्चि-दानन्द शब्दके एकाकार करनेकी चेष्टा प्रदर्शित होगी, तब उस प्रकारके अवैध प्राकृत मतवादका हम सर्वप्रकारसे वर्जन करेंगे। अधोक्षज अविमिश्र शब्द हमारी इन्द्रियोंको नियमित एवं पूर्ण सच्चिदानन्दकी सेवाके योग्य बनायेंगे। उस समय हम परा विद्यामें प्रतिष्ठित होंगे।

श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन चेतनका आनन्दाम्बुधि वर्द्धनकारी है। हम लोग अधिकांश समय ही क्षणिक, अकिंचित्कर एवं परिणाममें दुःखदायी सुखके मायामृग हो पड़ते हैं। किन्तु हमारे चेतनकी आकांक्षा सर्वदा ही नित्य,

पूर्ण, अखण्ड चिदानन्द-समुद्रके लिए वर्त्तमान है। एकमात्र कृष्णनाम ही हमें नित्यानन्द सागरका सन्धान-प्रदान एवं आनन्द-सागरमें निमज्जित करा सकते हैं। दूसरी साधन-प्रणालियाँ वास्तव आनन्द-प्रदान करनेमें असमर्थ हैं। दूसरे साधनोंद्वारा तात्कालिक दुःख-निवृत्ति या दुःखका स्तब्ध भावमात्र हमारे निकट उपस्थित हो सकता है, किन्तु केवल स्तब्धभाव वास्तवताकी श्रेणीमें परिगणित नहीं हो सकता।

श्रीकृष्णनाम हमें प्रति पदमें पूर्ण अमृतका आस्वादन करा सकते हैं। अमृत कठिन वस्तु नहीं है। वह तरल, सुस्वादु, संजीवक एवं अमरत्व साधक है। श्रीकृष्णनाम अखिल रसमय हैं। श्रीकृष्णनाममें पाँच प्रकारके मुख्य चिन्मय रस और सात प्रकारके आगन्तुक गौण चिन्मयरस परिपूर्ण मात्रामें वर्त्तमान हैं। जागतिक अभिधानगत नाम विरस एवं कुरसका वहन करते हैं। इसकी तो बात ही क्या, ब्रह्म, परमात्मा, नारायणादि नाममें भी अखिल चिद्रस नहीं है। ये सभी असम्यक्, आंशिक और तटस्थ-विचारसे अखिलरसके न्यूनता-ज्ञापक हैं। किन्तु श्रीकृष्णनामरस श्रीकृष्णस्वरूपकी तरह अखिलरस-विग्रह हैं।

हमारे पूर्वाचार्य श्रील रूपगोस्वामीपादने रसकी ऐसी परिभाषा की है—

व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कार भारभूः ।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढ़ं स्वदते स रसो मतः ॥

प्राकृत भावनाका पथ या तथाकथित आध्यात्मिक भावनाका पथ अतिक्रमपूर्वक अप्राकृत चमत्कारातिशयके आधार-स्वरूप जो स्थायीभाव शुद्ध, सत्त्व, परिमार्जित, उज्ज्वल हृदयमें आस्वादित होता है, वही रस कहलाता है।

रस आस्वादन की वस्तु है। वह आस्वादन चिदास्वादन है। चिदास्वादन तब ही सम्भव है, जब हम लोग जागतिक आवर्जनाओंको झाड़कर दूर फेंक दें। जब हम लोग श्रीगुरु-कृपासे आवर्जना या आवरण-मुक्त हो जाते हैं, तब ही अखिल रसामृत-विग्रह श्रीनाम हमारे निर्मल चेतनस्वरूपमें उनके अप्राकृत रसमय स्वरूपको प्रकटित करते हैं। उस समय हम अविच्छिन्न तैलधाराकी तरह अप्राकृत नाम-रस आस्वादन कर श्रीनाम-प्रभुका इन्द्रिय-तर्पण कर सकते हैं। आत्मेन्द्रिय-तर्पण कार्य आस्वादन नहीं, वह तो भोग या काम है। अप्राकृत नामप्रभु जीवों का 'काम' सहन नहीं करते। उनके निकट अप्राकृत रसनिकेतन श्रीनाम अपना स्वरूप प्रकाश नहीं करते। ऐसे व्यक्ति नामापराधको ही 'नाम' समझकर मनःकल्पित विकृत रसके द्वारा विक्षिप्त हो पड़ते हैं।

श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनका सातवाँ फल सर्वात्मस्नपन है। श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तन ही सर्वांगद्वारा अप्राकृत कामदेवकी सेवाका उपाय और उपेय है। व्रजवधूएँ एवं व्रजवधू-शिरोमणि श्रीमती वृषभानुनन्दिनी सर्वांगों द्वारा अखिलरसामृत-मूर्त्ति श्रीनन्दनन्दनकी जो अप्राकृत काम-सेवा करती हैं, उसी अप्राकृत काम-सेवाकी जो लोग व्रजवधूओंके आनुगत्यमें लालसा करते हैं, श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन उनका ही मुख्य साधन और साध्य है। श्रीकृष्णसंकीर्त्तनमें सर्वात्मस्नपन या सर्वात्माद्वारा श्रीकामदेवका इन्द्रिय-तर्पण

सम्यक् प्रकारसे साधित होता है। श्रीकृष्ण-कामसेवा-रसामृतसिन्धुमें जिनकी सर्वात्मा स्नपित या स्नात हो चुकी है, ऐसी मुकुन्दप्रेष्ठा श्रीमती राधिकाजीके कुण्डमें जो व्यक्ति सर्वात्मस्नपनकी आकांक्षा करते हैं, वे लोग श्रीनाम-संकीर्त्तनको ही एकमात्र साधन रूपसे वरण किया करते हैं। श्रीकृष्णसंकीर्त्तनको छोड़कर पृथक् रूपसे स्मरण-प्रयत्नादि द्वारा श्रीमती राधाजीके कुण्डमें एवं अखिलरसामृत-सिन्धुमें किसीका भी सर्वात्मस्नपन नहीं होता। पृथक् रूपसे स्मरण-प्रयत्नादि प्रतिष्ठाशाकी आकांक्षायुक्त कृत्रिम और आनुकरणिक अवैध चेष्टा मात्र है। एकमात्र श्रीकृष्ण-संकीर्तनसे ही सर्वात्मा स्नपित होती है। सर्वात्मास्नपन-सिद्धिमें केवलमात्र संभ्रम-विचारसे नाभिके ऊपरी प्रदेशसे शिरोदेश तक उत्तमांग द्वारा ही भगवानकी सेवा-चेष्टा प्रदर्शित नहीं होती। नाभिके नीचके प्रदेशसे पदनख तक सर्वचिदंग द्वारा अर्थात् सर्वात्मा द्वारा अप्राकृत कामदेव की अप्राकृत कामसेवाकी योग्यता प्राप्त होती है।

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(मर्कट-वैराग्य)

१—मर्कट-वैराग्य द्वारा साधकोंका क्या अनिष्ट होता है? उसके परित्यागसे क्या फल प्राप्त होता है?

"मर्कट-वैराग्य एक प्रधान हृदय-दौर्बल्य है। इसे यत्नपूर्वक दूर करनेसे भजनमें शक्ति-का उदय होता है। उस समय जीवकी कपटता, शठता, प्रतिष्ठाशा आदि बद्धमूल शत्रुवर्ग पराजित होते हैं एवं शुद्धभक्ति उदित होकर जीवको चरितार्थ करते हैं।"

—'मर्कट-वैराग्य' स० तो० ८।१०

२—वैरागीके लिये यात्राभिनय दर्शन करना क्या उचित है?

"जो वैरागी नाट्य-शालामें स्त्रियोंका दर्शन करते हैं एवं उनकी भाव-भङ्गी देखते हैं, वे भी मर्कट-वैराग्य आचरण करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। यात्रा या नाटक देखनेमें या सुननेमें जो वैरागी प्रवृत्त होते हैं, वे दोषी हैं।"

—'मर्कट-वैराग्य' स० तो० ८।१०

३—भावोदय न होनेसे क्या भेक-ग्रहण उचित है?

" 'विरक्त' कहकर परिचय देनेसे ही विरक्त होते हैं—ऐसी बात नहीं। यदि भावोदयक्रमसे इन्द्रियार्थमें अरुचि स्वयं उप-

स्थित न हो, तो उनके लिये भेक-ग्रहण करना अवैध है।"

—चै० शि० ५।२

४—स्त्रीसंग-लिप्सा अन्तरमें रहनेपर अपक्वावस्थामें वैराग्य अवलम्बन करना क्या उचित है ?

"यदि स्त्री-संभाषणकी प्रवृत्ति हृदयके किसी भी स्थानमें अवस्थित हो, तो भेक-ग्रहण न करना चाहिये। गृहमें रहकर मर्कट-वैराग्य दूर कर सर्वदा कृष्णनामानन्दसे आत्माकी उन्नति साधन करें—व्यस्त होकर अकालमें वैराग्य ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

—'मर्कट-वैराग्य' स० तो० ८।१०

५—किनका वैराग्याभिनय मर्कट-वैराग्य में परिणत होनेकी संभावना है ?

"भक्तिजनित स्वाभाविक वैराग्य पूर्णबल-से उदित होनेके पूर्व ही जो गृहस्थ-धर्म परि-त्याग करते हैं, उनका वैराग्य ही मर्कट-वैराग्य हो जानेकी संभावना है।"

—मर्कट-वैराग्य' स० तो० ८।१०

६—मर्कट-वैरागी के क्या लक्षण हैं ?

"हृदयमें विषय-चिन्ता, गोपनमें स्त्रियोंके साथ सहवास, बाहरमें कौपीन, बहिर्वासादि वैराग्यके चिन्ह—ये सभी ही मर्कट-वैरागीके लक्षण हैं।"

—अ० प्र० भा०, म० १६।२३८

७—मर्कट वैरागी कौन हैं ?

"वैरागी होकर जो व्यक्ति स्त्री-संभाषण करते हैं, वे ही मर्कट-वैरागी हैं।"

—'नामबलसे पापबुद्धि,' ह० चि०

८—क्या केवल अगृही व्यक्ति ही मर्कट-वैरागी होते हैं ? गृहियोंका मर्कट-वैराग्य किस प्रकार है ?

"मर्कट-वैरागी दो प्रकारके हैं—अर्थात् गृही मर्कट-वैरागी एवं अगृही मर्कट-वैरागी। * * * गृहियोंमें जो व्यक्ति अथवा गृहत्याग के लिये व्याकुल हैं, वे लोग अत्याचारी हैं।"

—'मर्कट-वैराग्य', स० तो० ८।१०

९—वैरागी वेष-ग्रहणसे ही क्या निर्विषयी भक्त हो सकते हैं ?

"वैराग्य-वेषादि धारण करनेसे ही विषय-हीन भक्त बन सकते हैं, ऐसी बात नहीं। क्योंकि अनेक स्थलोंमें वैरागी लोग विषय-संचय एवं विषय-अर्जन करते हैं। पक्षान्तरमें अनेक विषयी-प्राय व्यक्ति हृदयमें युक्तवैराग्य के साथ हरिभजन करते हैं।"

—'जनसंग', स० तो० १०।११

१०—मुमुक्षावश होकर क्रम-पथ-त्यागसे क्या अनिष्ट होता है ?

"मुमुक्ष होकर क्रम परित्याग करनेपर मर्कट-वैराग्य आकर जीवको कदाचारमें डाल देता है।"

—चै० शि० १।७

११—अस्थिर वैरागी कौन हैं ?

"कलह, क्लेश, अर्थाभाव, पीड़ा और विवाहके अघटनके कारण क्षणिक वैराग्यका उदय होता है, उसके द्वारा प्रेरित होकर जो लोग वेष ग्रहण करते हैं, वे ही अस्थिर वैरागी हैं। उनका वैराग्य नहीं रहता, वे शीघ्र ही कपट वैरागी हो पड़ते हैं।"

—चै० शि० ५।२

१२—औपाधिक वैरागी कौन हैं ?

जो व्यक्ति मादक-द्रव्योंके वशीभूत होकर संसारके अयोग्य होते हैं, वे नशेके समयमें एक प्रकारकी औपाधिक हरिभक्ति प्रकाश करने का अभ्यास करते हैं, अथवा जड़रतिके आश्रय में शुद्धरतिकी साधन-चेष्टा करते हैं, वे वैराग्य-चिन्ह धारण कर औपाधिक वैरागी हो पड़ते हैं।"

—चै० शि० ५।२

१३—जगतमें उत्पात और वैष्णव धर्मके कलङ्क कौन हैं ?

"भागवती रति-जनित विरक्ति न होनेपर जो वैराग्य-चिन्ह धारण करते हैं, वे अवश्य ही जगतके लिये उत्पात और वैष्णव-धर्मके कलङ्क-स्वरूप हैं।"

—'भेकधारण' स० तो० २।७

१४—समस्त निःसंग साधुओंके प्रति लोगों का अविश्वास हो जानेके कौन दायी हैं ?

"निःसंग बाबाजी लोगोंके लिये स्त्रीलोभ, अर्थलोभ, खाद्यलोभ और सुखलोभ अत्यन्त वर्जनीय हैं। किसी-किसी निःसंग चिन्हधारी वैरागीमें वे सभी दौरात्म्य या असदाचरण रहनेके कारण समस्त निःसंग पुरुषोंके प्रति वैष्णव-जगतका अविश्वास हो पड़ता है।"

—भेकधारण' स० तो० २।७

१५—अखाड़ाधारी लोगोंकी सेवादासी रखनेकी रीति क्या वैष्णव-धर्मानुमोदित कार्य है ?

"अखाड़ाधारी बाबाजी लोगोंमें अखाड़ेमें स्त्री लोगोंको सेविका रखना एक भयंकर अमंगलजनक कार्य है। किसी-किसी अखाड़ेमें बाबाजीके पूर्वाश्रमकी वनिता सेविका रूपसे निवास करती हैं। जिस अखाड़ेमें स्त्रियोंके न रहनेसे नहीं चलता, उस अखाड़ेमें यथार्थ विरक्त पुरुष कदापि नहीं रहते। देव-सेवा और साधु-सेवाकी छलना करना ही केवल इन सब कार्योंका मूलीभूत तत्त्व है।"

—'भेक-धारण', स० तो० २।७

१६—केवल विषयराग दमन करनेसे ही क्या सुफल पाया जा सकता है ?

"विषय रागको दमन करनेसे ही जो वैकुण्ठ-राग हो, ऐसी बात नहीं। कई व्यक्ति वैराग्य आश्रय कर केवल विषय-रागको दमन करनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु वैकुण्ठ-रागको बढ़ानेकी चेष्टा नहीं करते। उससे अन्तमें अमंगल ही होता है।"

—प्रे० प्र० ४ र्थ प०

१७—परमार्थका उद्देश्य न रहनेपर वैराग्यकी कोई सार्थकता है या नहीं ?

"प्रत्याहार द्वारा इन्द्रिय-संयम होनेपर भी यदि प्रेम न हो, तो उसे भी शुष्क एवं तुच्छ वैराग्य कहना होगा। क्योंकि परमार्थके लिये त्याग या ग्रहण, दोनों ही समान फल देते हैं। निरर्थक त्याग केवल जीवको पाषाणकी तरह बना डालता है।"

—प्रे० प्र० २ य प०

१८—कब गृहत्यागका अधिकार होता है ?

प्रवृत्ति जब पूर्ण रूपसे अन्तर्मुखी होती है तब ही गृहत्यागका अधिकार होता है। उसके पूर्व गृहत्याग करनेपर फिरसे पतन होनेकी विशेष आशंका है।"

—जै० ध० ७ वाँ अ०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

—०—

प्रायश्चित्त

इस लोकमें व्रतानुष्ठानोंके द्वारा शरीर, मन और वचनसे पूर्वजन्ममें अथवा इस जन्ममें जानकर अथवा बिना जाने किये गये पापों को नष्ट करनेका जो प्रयत्न किया जाता है, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। मनुसंहिताके ग्यारहवें अध्यायमें, स्मार्त्त रघुनन्दनके अट्ठाईस तत्वोंके अन्तर्गत प्रायश्चित्त-तत्त्वमें तथा पुराण, तन्त्र, संहितादि ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न पापोंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था है। फिर एक पापकी ही सामर्थ्य और असामर्थ्यकी दृष्टिसे बहुत प्रकारके प्रायश्चित्त की व्यवस्था देखी जाती है। मनुसंहिताके ग्यारहवें अध्यायमें कहा गया है—

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितञ्च समाचरन् ।
प्रसज्जंश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नराः ॥

शास्त्रानुमोदित आचरण नहीं करनेसे, निन्दित कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे एवं इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होनेसे मनुष्यको प्रायश्चित्त करना पड़ता है—

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात् पूर्वकृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत् सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥

जो द्विजातीय व्यक्ति इसजन्ममें दैवयोगसे प्रमादवशतः इसजन्मके पाप ही हों या पूर्व जन्मके पाप ही क्यों न हों, इन सभी पापोंके प्रायश्चित्त करने योग्य होकर भी यदि प्रायश्चित्तका अनुष्ठान न करें, तो उस व्यक्ति के लिये सज्जन व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध रखना उचित नहीं है।

कोई-कोई व्यक्ति इसजन्मकी एवं और कोई व्यक्ति पूर्वजन्मकी दुश्चरित्रताके कारण विकृतांग प्राप्त करते हैं। अनादिकालसे बहिर्मुख जीव मनुष्यकुलमें जन्म ग्रहण करने पर भी रूप-रसादि विषयोंमें आसक्त होकर नाना प्रकारके पापकर्म करनेके लिये लालायित होते हैं। भगवद्विमुखतासे ही पापबीजकी उत्पत्ति होती है। ये सभी पापबीज असंख्य जीवोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे वृद्धि प्राप्तकर बड़ी विचित्र पापफल-राशि उत्पन्न करते हैं। शास्त्रोंमें महापातक, अनुपातक, समानपातक, उपपातक, अतिभ्रंशङ्कर-पातक, अपात्रीकरण-पातक, मलावह-पातक आदि बहुत प्रकारके पापोंका उल्लेख पाया जाता है। चार्वाक आदि नास्तिक व्यक्ति वेदादि शास्त्रोंको सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार करनेके कारण इन सभी पाप और प्रायश्चित्तोंकी परवाह नहीं करते। शरीरको ही सब कुछ माननेवाले कर्मी-व्यक्ति परलोकमें विश्वास रखते हैं एवं परलोकमें स्वर्ग आदि सुखके लिये भी इच्छा करते हैं। अतः कर्मियोंमें प्रायश्चित्तका विशेषरूपसे प्रचलन देखा जाता है। बंगालमें स्मार्त्त रघुनन्दनकी प्रायश्चित्त-व्यवस्था कर्मजड़स्मार्त्त समाजमें विशेषरूपसे प्रचलित है। लेकिन भगवत्सेवा-कांक्षी वैष्णवलोग पाप या पुण्य, स्वर्ग या नरक—किसीकी भी इच्छा नहीं करते। वे अपनी इन्द्रियोंकी सुखकामनाके अधीन होकर कोई भी कार्य नहीं करते। वे लोग सद्गुरु, साधु और सात्त्वत शास्त्रोंद्वारा

यह जानते हैं कि जीव भगवानका नित्यदास है। भगवानकी नित्यसेवा ही उसका स्वरूप धर्म है। अतएव देह और मनके धर्मरूप पाप और पुण्यसे वे सर्वदा दूर रहते हैं। वे सभी कार्य भगवानकी सेवाके उद्देश्यसे करते हैं। इसलिये कोई भी पाप उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। जहाँ स्वयं फलभोक्ता बनकर कार्य किया जाता है, वहीं पर भगवानकी विस्मृति और उसके साथ पाप वासनाका उदय होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥
(गीता ३।१३)

साधु-लोग यज्ञेश्वर विष्णुका अवशेष ग्रहण करते हैं। इसलिये वे पञ्चसूनादि पापोंसे मुक्त हैं। जो व्यक्ति भोक्ताके अभिमानसे यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता और प्रभु श्रीकृष्णको छोड़कर अपने लिये कर्म करते हैं, वे ही पापके भागी होते हैं। भगवद्भक्त लोग सम्बन्धज्ञान युक्त होते हैं, अतएव स्वभावतः ही किसी निषिद्ध पापाचारमें उनकी मति नहीं होती। यदि किसी भी कारणसे कोई पाप हो जाय, तो भगवान बिना प्रायश्चित्तके ही उन्हें शुद्ध कर देते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, बाईसवें परिच्छेदमें कहा गया है—

विधि-धर्म छाड़ि भजे कृष्णेर चरण ।
निषिद्ध पापाचारे तार नभु नहे मन ॥
अज्ञाने वा यदि हय पाप उपस्थित ।
कृष्ण तारे शुद्ध करे ना करान प्रायश्चित ॥

श्रीमद्भागवतमें (११।५।३८) भी कहा गया है—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य-
त्यक्तान्य-भावस्य हरिपरेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥

अर्थात् अन्यकामना परित्यागपूर्वक हरिके पादपद्मोंका जो व्यक्ति भजन करते हैं, उन प्रिय व्यक्तियोंसे यदि कदापि किसी भी प्रकार से पाप उपस्थित हो, तो परमेश्वर हरि उनके हृदयमें प्रविष्ट होकर उस पापको नष्ट कर देते हैं। श्रीमद्भागवतके छठवें स्कन्धमें अजामिल उपाख्यानमें प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें सुन्दर मीमांसा पाई जाती है।

महाराज परीक्षितद्वारा शुकदेवजीसे मनुष्योंके लिये नरकमें गिरनेसे बचनेका उपाय पूछनेपर श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा कि जो सभी मनुष्य शरीर अथवा मनद्वारा पाप करके यदि इस लोकमें मन्वादि शास्त्रोंके अनुसार प्रायश्चित्त नहीं करें, तो उन्हें नरक भोगना पड़ता है। वैद्य जिस प्रकार रोगको तीव्रता और लघुताके अनुसार औषध देते हैं, उसी प्रकार पापकी महानता और अल्पता विचार कर उसीके अनुसार प्रायश्चित्त करना उचित है। उसके उत्तरमें महाराज परीक्षितने कहा—

दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्याहमनोऽहितम् ।
करोमि भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥
क्वचिन्निवर्त्ततेऽभद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः ।
प्रायश्चित्तमथोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥
(भा० ६।१।९-१०)

अर्थात् इसलोकमें देखा जाता है कि पुरुष शास्त्रकथित नरकपात और राजदण्डादि भय की बात जान-सुनकर प्रायश्चित्त करनेके बावजूद भी विवश होकर पुनः अपने अहित-कारी पापकार्यमें आसक्त होते हैं। अतएव बारह-वार्षिकी व्रतादियोंको किस प्रकारसे

प्रायश्चित्त कहा जा सकता है ? इन सभी पापोंका प्रायश्चित्त करने पर भी तो पापका बीज नष्ट नहीं होता। यदि पापको जड़से ही नाश नहीं किया गया, तो नरकपात भी अवश्य ही होगा। हाथीको स्नान करा देने पर जिस प्रकार दूसरे क्षणही वह अपने शरीर पर पुनः धूल डाल लेता है, उसीप्रकार मनुष्य प्रायश्चित्त करके भी पुनः पापकार्य करनेके कारण नरक-गमन करता है। तब श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराजसे कहा—

कर्मणा कर्म-निर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते।
अविद्वदधिकारित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥
नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि।
एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥
(भा० ६।१।११-१२)

चान्द्रायणादि कठिनसाध्य प्रायश्चित्तों द्वारा पापका मूलोत्पाटन सम्भव नहीं है। तात्कालिक पाप-नाश होनेपर प्रायश्चित्तादिसे भी अविद्यानाश न होनेके कारण संस्कार-वशतः पुनः-पुनः पाप होता रहता है। तत्व-ज्ञान प्राप्त होना ही यथार्थ प्रायश्चित्त है। जिस प्रकार नियमित रूपसे प्रतिदिन पथ्य ग्रहण करते रहने पर किसी व्यक्तिपर व्याधि आक्रमण नहीं कर सकती, उसी प्रकार नियमितरूपसे तत्त्व-आलोचना करते-करते जीवकी अविद्या दूर हो जाती है—

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च।
त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन वा ॥
सर्वाम्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञा श्रद्धयान्विताः।
क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्मविदानलः ॥
(भा० ६।१।१३-१४)

अर्थात् धर्मज्ञ बुद्धिमान पुरुष श्रद्धायुक्त होकर तपस्या, ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग, सत्य, शौच, यम, नियम, आदि द्वारा काय-मनोवाक्यसे किये गये महान् पापको भी आग द्वारा बांसके वनको जलानेकी तरह जलाकर नष्ट कर देते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें (४।३६-३७) अर्जुनके प्रति भगवान कृष्णका वाक्य—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! यदि तुम समस्त पापाचरणकारी व्यक्तियोंमें सबसे अधिक पाप करनेवाले भी क्यों न हो, तो भी ज्ञानरूपी नौकापर चढ़कर तुम सम्पूर्ण पाप-समुद्रको पार कर जाओगे। प्रज्वलित अग्नि जिस प्रकार लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार समस्त कर्मोंको ज्ञानरूपी अग्नि जला देती है अर्थात् अप्रारब्ध कर्मका क्षय, वर्त्तमान कर्मको शिथिल एवं प्रारब्ध कर्मको दुर्बल बना देती है।

किन्तु अग्नि द्वारा बाँसका समूह नष्ट होने पर भी भूमिके भीतर वर्त्तमान जड़का नाश नहीं होता। कई समय देखा जाता है कि वर्षाका जल प्राप्त कर वही बाँसकी जड़ पुनः अंकुरित होने लगती है। जिस प्रकार पूर्व उदाहरणके अनुसार देखा जाता है कि नियमित पथ्यादि ग्रहण करने पर भी जीवोंमें व्याधिका बीज रहनेके कारण व्याधिका पुनः आविर्भाव होता रहता है, यह भी उसी प्रकार है। अतएव तपस्या, ब्रह्मचर्य, त्याग या यम-नियमादिके द्वारा भी सम्पूर्णरूपसे पापबीजका उन्मूलन नहीं होता। कर्ममार्गीय कठिनसाध्य प्रायश्चित्तादिकी अपेक्षा ब्रह्मचर्य, तपस्या, यम, नियमादि निश्चय ही उत्तम उपाय हैं,

किन्तु इन सबके द्वारा भी पापका मूलकारण सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं होता ।

केचिद् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥
(भा० ६।१।१५)

किन्तु हिमराशि जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे सम्पूर्ण रूपसे विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार किसी-किसी वासुदेवपरायण भगवद्भक्तका ज्ञानकर्मादिसे अनावृत तीव्र भक्तियोगके प्रभावसे पूर्ण चिद्सूर्य श्रीभगवान के उदयसे सम्पूर्ण पापबीज समूल नष्ट हो जाते हैं। अरुणोदयसे ही जिस प्रकार रात्रिकी हिमराशि दूर हो जाती है, चारों दिशाओंमें आनन्द छा जाता है, व्याघ्रादि हिंसक जन्तु भाग जाते हैं, उसी प्रकार चिद्सूर्यके उदय होने मात्रसे ही गौणरूपसे समस्त पापबीज और अविद्या-राशि दूर हो जाती हैं, सभी उपाधियों द्वारा अनावृत तीव्र भक्तियोगकी सुनिर्मल तीक्ष्ण किरणोंसे जीव श्रीभगवानके प्रेमानन्दानुशीलनमें तल्लीन हो जाते हैं।

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥
सध्रीचीनोह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।
सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ।
(भा० ६।१।१६-१७)

श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराज से कहा—हे राजन् ! भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि पापी पुरुष कृष्णमें आत्म-समर्पण कर भगवद्भक्तोंकी सेवा द्वारा जिस प्रकार पवित्र हो सकते हैं, तपस्यादि द्वारा उस प्रकार शुद्ध नहीं हो सकते ।

अतएव इस लोकमें भक्ति ही एकमात्र उत्तम एवं वरणीय पथ है। इसी भक्तिमार्ग से ही नित्य-मंगल प्राप्त होता है और भय रहित हुआ जा सकता है। इसी भक्ति-मार्गमें सुशील, उदारतापरायण, निष्काम साधु लोग विचरण करते हैं। इसलिये ज्ञान-मार्गकी तरह असहायताके कारण भय या कर्ममार्गमें विचरणकारी मत्सर व्यक्तियोंसे भी किसी प्रकारके भयकी आशंका नहीं है। ज्ञान-मार्गीय व्यक्तियोंमें शरणागतिका अभाव होता है। यह बात श्रीमद्भागवतके दसवें स्कन्धमें ब्रह्मस्तवके "येऽन्येरविन्दाक्ष" श्लोकसे देखी जाती है। कर्ममार्गीय व्यक्ति भोक्ता अभि-मानसे पूर्ण हैं, अतएव वे लोग मत्सर हैं। किन्तु भगवद्भक्त लोग ज्ञानियोंकी तरह भगवान बननेके इच्छुक होकर श्रीभगवानके नित्यदासत्व या शरणागतिका परित्याग नहीं करते एवं कर्मियोंकी तरह स्वर्गादि सुखके लिये भी मत्सरतापरायण नहीं होते। वे सर्वदा सम्बन्ध-ज्ञानसे युक्त होते हैं। वे भग-वानके नित्यदास-ज्ञानसे सर्वदा भगवान और भगवद्भक्तोंके शरणागत होकर उनकी सेवामें नियुक्त हैं। अतएव "जाँहा कृष्ण ताँहा नाहि मायार अधिकार" उक्तिके अनुसार वहाँ पाप लेशमात्र भी नहीं रह सकता। भक्तिके छः मुख्यतम लक्षणोंमें प्रथम लक्षण यही है कि भक्ति—"क्लेशघ्नी" अर्थात् क्लेश-विनाशिनी है। 'क्लेश' शब्द द्वारा पाप, पापबीज और अविद्या—इन तीनोंको समझना चाहिये। जिन्होंने विष्णुका आश्रय लिया है, उनके जिन पापोंका फल अभी भी आरम्भ नहीं हुआ है, जो पाप फलोन्मुख हैं, एवं जो कुछ पाप या अविद्या-बीज हैं, वे समस्त ही क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। भक्तिरसामृतसिन्धुमें भी कहा गया है—

अप्रारब्धफलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम् ।
क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता (९।३०, ३१, ३२) में भी वर्णित है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

अनन्य शरणागत भक्तोंको कोई भी पाप स्पर्श नहीं करता। श्रीभगवान उसका भार ग्रहण करते हैं। अर्जुनके प्रति भगवानने भी कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अतएव भगवद्भक्त लोग ही सम्पूर्णरूपसे भगवानके शरणागत होनेके कारण सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त होते हैं। उनको पृथक् रूपसे प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। कर्म करनेवाले व्यक्ति सैकड़ों कठिन-साध्य प्रायश्चित्त करनेपर भी भगवान नारायणके प्रति शरणागतिके अभावमें पाप से मुक्त नहीं होते। उनका प्रायश्चित्त करना केवल हाथीके स्नानकी तरह पुनः-पुनः निरर्थक होता है—

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः॥
(भा ६।१।१८)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्,कर्मज्ञान-मय जो सभी प्रायश्चित्त हैं, वे पुरुषको निश्चित रूपसे पवित्र नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मदिराके घड़ेको पुनः-पुनः नदीमें धोनेपर भी उस घोड़ेका दुर्गन्ध अल्प-स्वल्प कहीं न कहीं लगा रह जाता है। किन्तु ज्ञान-कर्मादिको छोड़कर भी केवल भक्ति पुरुषको सम्पूर्ण रूपसे पवित्र कर प्रेम तक प्रदान करती है।

"सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥"
(भा० ६।१।१-६)

जो एकबार भी भगवानके पादपद्मोंमें मनोनिवेश करनेके कारण भगवानके गुणोंमें अनुरक्त मात्र होते हैं, किन्तु अबभी उन्हें यदि भगवदनुभव प्राप्त न हुआ हो अर्थात् भगवद्भक्तिका उदित होना तो दूर रहा, भक्तिका आभास मात्र ही हुआ हो, तो यमराज या यमदूत स्वप्नमें भी उनको दर्शन नहीं कर सकते, क्योंकि भगवानके प्रति केवल एकबार भक्त्याभास उदित होनेसे ही समस्त प्रायश्चित्त करना हो जाता है। अतएव जो सारग्राही और बुद्धिमान व्यक्ति हैं, वे क्षुद्र देह और मन के धर्मरूप पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म स्वर्ग और मोक्ष—इन द्वन्द्वोंको अकिंचित्कर जानकर सब प्रकारके धर्माधर्मका त्यागकर एकमात्र हरिभक्त एवं श्रीहरिके शरणागत होकर हरिसेवामें सर्वदा नियुक्त रहते हैं—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्॥
(श्रीमद्भागवत ६।२।११)

(साप्ताहिक गौड़ीयसे अनूदित)

अनुवादक—श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी

—:※:—

परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवकी शुभाविर्भाव-तिथि पर
दीन-हीन-सेवक द्वारा हृदयके दो
पुष्प-समर्पण

(१)

केशव गुरुवर भज गुणराशि ।
सील गुणाकर विमल ज्ञाननिधि विषय-वासनारहित उजासी ।।
कोमलचित्त दीन हित-चिन्तक लोभ-अमर्ष मोहत मनासी ।
शम-दम निरत नियम-प्रतिपालक कृष्णभक्ति चैतन्य उपासी ।।
शीतल सरस अनुग्रह पूरित नाम-मन्त्र अनुरक्त विकासी ।
निखिल पुराण-वेद संरक्षक जग-उद्धारक मोद प्रकाशी ।
सर्वभाव गुरुपद-दर्शन हित नित्य रहत अँखिया ये प्यासी ।।

(२)

गुरुवर चरण-रेणु सुखदाई ।
पावन मृदुल चन्द्र सम शीतल सरस सहाई ।।
त्रिविध तापहर पाप-निवारक मंगल करत सदाई ।
महामोह अज्ञान विपतिव्रज नाश करत दृढ़ताई ।।
कृष्णभक्ति उज्वल रस-तटिनी को उद्भव मनभाई ।
कलिके दोष रहे नहिं छिनभर जिन निज देह छुवाई ।।
बिन साधन भव पारकरन की नौका सुदृढ़ सपाई ।
जो जन शीश अंगको भूषण जग जाकी प्रभुताई ।
तजि संसृति को विषय वासना सेवु अमृत की नाई ।।

वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री,
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, नाथद्वारा

धर्मका यथार्थ स्वरूप

(वर्ष १७, संख्या १२, पृष्ठ २७४ से आगे)

प्राचीनकालसे प्रचलित बौद्धोंका एवं जैनोंका शून्यवाद एवं नास्तिक्यवाद, सौर, शाक्त, शैव, गानपत्य, तन्त्र-मार्ग, पंच-मकार साधन, कापालिक, आर्य समाज, थियोसफी ब्राह्म-मत, पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा प्रचलित मतवाद तथा अनेकानेक आधुनिक भ्रमपूर्ण और अश्लील मत यथार्थ रूपमें धर्मके विरोधी मात्र हैं । इन सब मतोंमें सनातन भक्ति-धर्मके प्रति विद्रोहिता एवं विरोधिता, ईश्वरके यथार्थ स्वरूपके प्रति अनास्था, परलोकके प्रति अविश्वास या आंशिक भ्रमपूर्ण धारणा आदि बातें प्रचुर रूपमें देखी जाती हैं । इन मतोंकी उत्पत्ति सनातन धर्मके गूढ़भावकी अनभिज्ञता, महाजनोंके आनुगत्यका अभाव, अत्यन्त स्थूलदर्शिता आदिके कारण हुई हैं । इन सब दुष्ट मतोंके प्रचार लोग अपनी सुविधा-वादिता एवं घृणित स्वार्थकी पूर्तिके लिए अपनी वचन-चातुरीसे अन्तर्निहित भावको छिपाकर भोलेभाले अज्ञ जनसाधारणके निकट अपने कथनको लुभानेवाली भाषामें प्रस्तुत कर स्वयं वंचित होते हुए दूसरोंकी वंचना कर जगज्जीवोंका परम अमंगल साधन कर रहे हैं ।

इसके अलावा अन्यान्य पाश्चात्य या विदेशीय धर्मोंके प्रचारकोंने या स्थापकोंने हमारे सनातन धर्मका आंशिक या एकतरफा विचार लेकर तथा कुछ विद्रोहकी भावनासे प्रेरित होकर अपने अर्वाचीन, असामंजस्यपूर्ण, वेदविरुद्ध, दिखावटी एवं अन्तःसारहीन मतों का प्रचार किया है । एकमात्र विशुद्ध सनातन वैष्णव धर्मको छोड़कर अन्यान्य हेय, तुच्छ, खण्डित धर्मोंका या मतोंका अनुशीलन करने पर कदापि यथार्थ कल्याण नहीं हो सकता । सनातन धर्मको छोड़कर अन्यान्य धर्म या मतवाद छलना मात्र हैं । अतएव कहा गया है—

पृथिवीते जत कथा धर्म नामे चले ।
भागवत कहे ताहे परिपूर्ण छले ॥

सनातन वैष्णव धर्मको छोड़कर और सब धर्म कहे जानेवाले मत-मतान्तरोंमें धर्म अर्थ, काम और मोक्ष— इस चतुर्वर्गको ही परम पुरुषार्थ एवं परम प्राप्य माना गया है । उनमें ईश्वर एवं आत्माका पूर्ण सन्धान नहीं है । अगर कहीं कुछ वर्णन भी किया गया है, तो वह भी आंशिक एवं असम्यक् या भ्रमपूर्ण एवं संदेहास्पद है । किसी-किसी मतमें तो ईश्वर और आत्माका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया गया है । ईश्वर एवं जीवका नित्य सम्बन्ध रूपभक्ति एवं जीवों के चरम प्रयोजन प्रेमको या तो आनुषंगिक रूपसे वर्णन किया है अथवा उसका कहीं कहीं उल्लेख ही पाया नहीं जाता । अन्यान्य मत-मतान्तरोंमें यथार्थता केवल नाममात्र के लिए है । वे वास्तवमें यथार्थ तत्त्व एवं

सत्यसे सर्वथा अपरिचित एवं उससे असंख्य कोसों दूरीपर हैं।

स्वयम्भु (ब्रह्मा), शम्भु (शिवजी), नारदजी, कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार), देवहूति-पुत्र कपिल, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक (निमि महाराज), भीष्म पितामह, बलि महाराज, शुकदेवजी एवं यमराज— ये बारह महाजन विशुद्ध सनातन धर्मके यथार्थ तत्वोंसे सम्यक् प्रकार अवगत हैं। इनके अनुगत एवं विशुद्ध आश्रित व्यक्ति या महापुरुषों ने ही इन तत्वोंका प्राप्त किया है। इन बारह महाजनोंके विपरीत मत-मतान्तर ग्रहणकारी व्यक्ति धर्म तत्त्वके विषयमें या तो सर्वथा अनभिज्ञ हैं या संदेह-पूर्ण हैं। इन सनातन धर्मके मूल साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं। वे ही इसके साक्षात् प्रणेता एवं रक्षाकर्त्ता हैं। उन्होंने बद्ध जीवों पर अपार कृपा कर इसे मर्त्य-जगत्में प्रकट किया है। इस धर्ममें चतुर्वर्गरूप कपटताका लेशमात्र भी नहीं है। इसमें जीवोंका परम निर्मल, विशुद्ध एवं यथार्थ स्वरूप-धर्म वर्णित है। यह परम निर्मत्सर व्यक्तियोंका एक मात्र परम धर्म है। श्रीमद्भागवत, महाभारत, मूल रामायण, पंचरात्र, श्रीमद्गीता एवं अन्यान्य सात्त्विक शास्त्रोंमें इसी परम धर्मका ही वर्णन पाया जाता है। यह बात श्रीमद्भागवतके अनुबन्ध-श्लोकमें इस प्रकार वर्णन की गई है—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र
परमो निर्मत्सरानां सतां,
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु
शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किंवा परैरीश्वरः,
सद्यो हृद्यवरुद्ध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

अर्थात् इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थका सर्वप्रथम श्रीनारायण द्वारा चतुः श्लोकीके रूपमें ब्रह्माजीको उपदेश दिया गया था। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सभी भूतोंके प्रति दयाविशिष्ट साधु-स्वभाव युक्त व्यक्तियोंके लिए धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष तक कैतव (कपटता) शून्य परम धर्म वर्णित है। यह धर्म जीवोंका त्रिताप एवं उसके मूलस्वरूप अविद्या या स्वरूपेतर ज्ञानका नाश करनेवाला, परम कल्याण प्रदानकारी एव एकमात्र परम वास्तव वस्तु भगवानका तत्त्वज्ञान करानेवाला है। इसके श्रद्धापूर्वक श्रवणेच्छुक व्यक्तिमात्र ही केवल इच्छामात्रसे ही ईश्वरको हृदयमें आबद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। अतएव अन्य शास्त्रों की क्या आवश्यकता है?

जिस धर्ममें परम वस्तु भगवान्के प्रति एकमात्र विमल प्रेमका ही उद्देश्य है, वही जीवोंका यथार्थ धर्म है। उसीका आचरण करने पर यथार्थ कल्याण होगा। श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण, लीला आदि ग्रहण कर उनका भक्तियोग करना ही जीवोंका परम धर्म है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥
(भा० ६।३।२२)

भगवान्के गुण-श्रवण मात्रसे ही समुद्र-जलमें प्रवेश करते हुए गंगाजलकी तरह या तैल धारावत् विच्छेदरहित भगवान्के प्रति मनकी जो अवस्था है, वही निर्गुण भक्तियो-

का लक्षण है। पुरुषोत्तम स्वरूप भगवान्‌के प्रति अनुष्ठिता यह भक्ति हेतुरहिता, स्वतः सिद्धा एवं अवान्तर फलानुसन्धानरहिता है। इसीसे भगवान्‌की पूर्ण प्रसन्नता होती है एव उनकी पूर्ण कृपा प्राप्त करनेमें जीव समर्थ होते है। अन्यान्य समस्त धर्मोंका अनुष्ठान करके भी अप्राकृतस्वरूप अधोक्षज भगवान की लीलाकथा, नाम, गुण आदिके श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण रूप धर्ममें रुचि न हो, तो ऐसे अनुष्ठान व्यर्थ श्रममात्र हैं—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां
विश्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं
श्रम एव हि केवलम्॥
(भा० १।२।८)

भगवान्‌के चरणोंमें परमानुरक्ति और परम निर्मल आत्मज्ञानरूप निष्काम धर्मका फल धर्म-अर्थ-कामरूप त्रैवर्गिक अर्थ-प्राप्ति नहीं है। आपवर्गिक (मोक्ष प्रदानकारी) धर्मका जो साक्षात् अर्थ प्राप्त होता है, उसका फल विषय-भोग करना नहीं है। विषय भोग का फल इन्द्रियतर्पण नहीं है। जब तक जीवित रहें, तब तक कामकी सेवा की जा सकती है। अतएव भगवान्‌के तत्त्वका ज्ञान ही जीवनका मुख्य प्रयोजन है। नित्य-नैमित्तिक धर्मानुष्ठान द्वारा इस जगत्‌में जो स्वर्गादि प्राप्ति कही गई है, वह यथार्थ प्रयोजन नहीं, वंचनामात्र है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनसे सभी धर्मोंका परित्यागकर एकमात्र उनके ही शरणागत होनेकी बात कही है। उन्होंने यह आश्वास भी दिया है कि उन सब धर्मोंका परित्याग करनेसे यदि दोष होनेकी आशंका हो, तो उस दोष से वे अवश्य रक्षा करेंगे। 'यहाँ सभी धर्मोंको' कहनेसे आत्माके विमल धर्मरूप भगवत् भक्तिको छोड़कर सभी मानसिक एवं दैहिक, जागतिक एवं पारत्रिक (स्वर्ग सम्बन्धी)— समस्त अनित्य एवं नैमित्तिक तथा वर्णाश्रमादि तात्कालिक नित्य धर्मोंको लक्ष्य किया है। अगर इस प्रकार इन सब धर्मोंका परित्याग कर भगवद् भजन या भक्ति धर्ममें प्रवृत्त होकर किसी व्यक्तिका अपक्व अवस्थामें हठात् पतन भी हो जाय, तो उससे कोई हानि नहीं है। क्योंकि भगवत्कृपासे वह शीघ्र ही पुनः उठकर उसी स्खलित अवस्थासे भजनमें प्रवृत्त हो सकेगा। अतएव भगवान् श्रीकृष्णने कहा है— 'न मे भक्तः प्रणश्यति।' अन्यान्य धर्मों का भली प्रकारसे पालन करके भी यदि ईश्वरका अनादर या भगवद्भक्तिकी अवहेलना होनेपर नरक-गमन एवं निम्न गतिकी प्राप्ति अनिवार्य है। भक्ति ही सब सद्गुणोंकी आधारस्वरूपा एवं धर्मकी प्राणस्वरूपा है। बिना भगवद्भक्तिके निर्मलसे भी निर्मल ज्ञान, बड़ेसे बड़े सत्कर्म, अन्यान्य नैमित्तिक, ऐहिक एवं पारत्रिक, मानसिक एवं दैहिक धर्मोंकी विफलता मात्र है। इस सनातन धर्म का या भक्ति-धर्मका अल्पमात्रामें अनुष्ठान करने पर भी उससे कोई प्रत्यवाय या अनिष्ट नहीं होता। यह स्वल्प अनुष्ठान भी महान्‌से महान् भयको दूर कर देता है। जो व्यक्ति ऐकान्तिकताके साथ इसका पालन करें, वे अवश्य ही सब ऋणों एवं समस्त अन्यान्य कर्त्तव्योंसे मुक्त होकर जीवोंके प्रेमास्पदरूप भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं। इस विशुद्ध भगवद् धर्मका आश्रय लेनेपर कोई व्यक्ति

प्रमादके वशीभूत नहीं होता । वह नेत्रोंको बाँधकर दौड़ने पर भी न स्खलित ही होता है, न पतित ही होता है । भगवान्‌के प्रति सुदृढ़ प्रीतिवान् व्यक्ति कदापि अपने स्थानसे भ्रष्ट नहीं होते एवं भगवान्‌के अभय हस्तों द्वारा सुरक्षित होकर समस्त विघ्न प्रदान करनेवाले व्यक्तियोंके मस्तक पर पदाघात कर निर्भय रूपसे विचरण करते हैं ।

बिना भागवत धर्म या भक्तिके अनुष्ठान किये मनुष्य परिपूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते । उसके बिना सभी कर्त्तव्य करने पर भी मनुष्यके सम्पूर्ण कर्त्तव्य पूरे नहीं होते । भगवद्‌भक्तिरहित व्यक्ति यथार्थ मनुष्य कहलाया नहीं सकता । भगवद् भक्तियुक्त व्यक्ति ही देवता हैं एवं तद्विपरीत ही असुर हैं । परिपूर्णतम वस्तु होनेके कारण भगवान् को प्राप्त कर ही जीव परिपूर्णता, अभाव-राहित्य, अमृतत्व, शाश्वत शान्ति एवं दुःख-रहित विशुद्ध आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । इस सनातन धर्मका अनुष्ठान सभी व्यक्ति ही कर सकते हैं । इसमें किसी जागतिक योग्यता या गुणकी अपेक्षा नहीं है । भक्ति धर्म में केवल श्रद्धा ही अधिकार प्रदान करती है । भगवान्‌की प्रसन्नता होने पर क्या नहीं प्राप्त हो सकता है ? सर्व कर्मोंके एकमात्र भोक्ता एवं सर्वयज्ञेश्वर परात्पर प्रभु भगवान्‌की आराधना नहीं करनेसे या अवज्ञा होने पर उन-उन व्यक्तियोंका पतन या स्थान से च्युति होना अनिवार्य है । जिस प्रकार पेड़की जड़में पानी देनेपर प्रत्येक शाखा एवं उपशाखा पल्लवादिकी तृप्ति हो जाती है, मुखमें अन्न देने पर प्राणकी रक्षा होकर सभी इन्द्रियाँ कार्यक्षमता प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार भगवान् अच्युतकी आराधनासे सभी की पूर्ण परितृप्ति हो जाती है । इसी भक्ति धर्मके अनुष्ठानसे भगवद् प्रेमरूप महाधन पाकर इस मायाके संसारको जीव अनायास ही पार कर लेते हैं । जिस प्रकार गोवत्सपद को पार करनेमें लेशमात्र भी परिश्रम या कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार भगवान्‌के अनन्य शरणागतिरूप निर्मल भक्ति धर्मका आश्रय लेकर सभी व्यक्ति अनायास ही घोर भव-सागर उत्तीर्ण हो जाते हैं । उन्हें यह भी पता नहीं चलता कि हम संसारको कब उत्तीर्ण कर गये हैं ।

—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

सम्पादकीय

पत्रिकाका नव-वर्षमें पदार्पण

श्रीभागवत-पत्रिकाके १७ वर्ष हो चले हैं एवं १८वाँ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है । वर्त्तमान सामाजिक उथल-पुथल एवं वैज्ञानिक अन्धाधुन्धताके युगमें भी हमारे सनातन धर्म की नींव अक्षुण्ण एवं अटल है तथा इसके प्रचार-प्रसारमें भी कोई कमी नहीं आयी । भगवदिच्छासे हमारे भारतवर्षमें सब समय ही कोई न कोई महापुरुष आकर भूल-भटके जन-साधारणमें धार्मिक चेतनाको जगाते आये हैं । हमारे देशवासियोंका प्राणस्वरूप धर्म ही कहना होगा । अतएव धर्मविहीन भारतवर्षकी कभी कल्पना करना भी धर्मप्राण व्यक्तियों

के लिए अत्यन्त दुःसह एवं भयावह है। वर्त्तमान वैज्ञानिक युगकी बढ़ती हुई जड़वादिता एवं नास्तिकता, वर्त्तमान शिक्षित जन-समाजके अधिकांश व्यक्तियोंकी धार्मिक कार्योंके प्रति बढ़ती हुई उदासीनता एवं पराङ्मुखता आदिके बावजूद भी हमारे कुछ श्रद्धालु पाठकोंकी आन्तरिक सहानुभूति तथा हार्दिक उत्साहको लक्ष्य कर यथेष्ट सान्त्वना प्राप्त होती है। पाश्चात्य देशोंके बहुतसे व्यक्ति लोग भी अब सनातन धर्मकी महत्ता एव परम आवश्यकता की बहुत कुछ उपलब्धि कर इस ओर रुचि ले रहे हैं।

धीर व्यक्तियोंके मार्गमें हजारों बाधा-विपत्तियों या रुकावटेंके आनेपर भी वे अपने यथार्थ सत्य-मार्गसे कदापि विचलित नहीं होते। बल्कि वे और भी नये उत्साह एवं जोशके साथ अपने कार्यमें अग्रसर होते हैं। वे सभी बाधायें या रुकावटें उनकी महानता, अपार सहनशीलता, अतुलनीय उद्यम और ऐकान्तिकता आदि भावोंको और भी उज्ज्वलतम बनाकर जनसाधारणके समक्ष उन्हें आदर्श एवं उत्तम प्रेरणाके आलोक-स्तम्भके रूपमें प्रकटित करती हैं। अतएव भगवद् भक्त लोग बाधाओं एवं विपत्तियोंको भगवान्‌की ऐकान्तिक कृपा एवं परमार्थमें अग्रसर होनेके लिये विशेष सहायकके रूपमें ग्रहण कर लेते हैं। अनेकों भक्तोंने जगत्‌की शिक्षा एवं प्रेरणाके लिये विपत्तियों एवं बाधाओंको सहर्ष जान-सुनकर भी ग्रहण किया।

वर्त्तमान समयमें मनुष्य समाजके अधिकांश व्यक्तियोंकी रुचि अश्लीलता एव विपरीत भावनाओंकी ओर अधिक है। अतएव जनसाधारणकी दृष्टिका आकर्षण करनेके लिए शुद्ध भक्त लोग कदापि अश्लीलता, कृत्रिमता, पक्षपातिता आदिको प्रश्रय नहीं देते। शुद्ध भक्त लोग निरपेक्ष एवं कटु सत्यके ऐकान्तिक उपासक हैं। वे परापेक्षा कर अपनी सत्य-प्रियताका परित्याग नहीं करते। वे लोग भोगवादी, कर्मवादी, ज्ञानवादी, आदिको कदापि अपना समर्थन नहीं देते। वे अपनी अपस्वार्थपरताके वशीभूत होकर धर्म-नीति-वास्तविकता की तिलांजलि नहीं देते। जगत्‌में अधिकांश व्यक्ति ही भगवद्विमुख एवं भक्ति-विरोधी हैं। इसलिए आजकलकी Majority System (अधिक संख्याको आदर करनेकी प्रथा) का अनुसरण कर भगवद्भक्ति एवं आत्म-धर्मका परित्याग करनेका प्रयास— चरम मूर्खता एवं पाषण्डताका परिचय है। असंख्य जनमतका परित्याग करके भी निरपेक्ष एव श्रौत सत्यके पालनके लिए कृतसंकल्प एवं दृढप्रतिज्ञ होना आवश्यक है। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णव-लोग इसी आदर्शके मूर्त्तिमान विग्रह हैं। हमारी 'श्रीभागवत-पत्रिका' श्रीवैकुण्ठ-वार्त्तावह मूर्तिमती भगवद्वाणी-स्वरूपिणी हैं। इनका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ-प्राप्ति या लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा-प्राप्ति नहीं है। आजकल बहुतसे तथाकथित धार्मिक पत्रिकाओंमें भी कहानी, उपन्यास, धर्मसे असम्बद्ध बातें, परस्तुति या निन्दा आदि देखने में आती हैं। लोक-मनोरञ्जन एवं तथा-कथित लोकप्रियता-संग्रह ही इनका उद्देश्य रहता है। किन्तु शुद्ध भक्तोंके दासाभिमानी व्यक्ति ऐसे कार्यके सर्वथा असहयोगी एवं अनिच्छुक हैं।

श्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्धादि सत्यमूलक एवं हरिविमुख जनसमूहको भगवद्-भजनोन्मुख करनेके उद्देश्यसे पूर्ण हैं। जगतके तुच्छ एवं अकिंचित्कर जड़ीय भोगों एवं सुखोंके बदलेमें सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपादेय चिद् सुखका बोध कराना ही इसका यथार्थ तात्पर्य है। 'सप्तम गोस्वामी' के नामसे प्रसिद्ध जगद्वरेण्य जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का 'जड़काव्यरसो न हि काव्यरसः, कलिपावन-गौरसो हि रसः' – यह वाक्य ही हमारे लिए

प्रेरणा-स्तम्भ है। महाजनोंका ऐकान्तिक आनुगत्य एवं उनका विशुद्ध आदर्श-ग्रहण ही भक्ति-पिपासु सज्जनोंके लिए जीवनस्वरूप है। हरिभजनमें सुदृढ़ता लाना एवं अप्राकृत भावोद्दीपन कराना ही विशुद्ध पारमार्थिक पत्र-पत्रिकाओंका मूल उद्देश्य है। जीवोंके नित्यधर्मकी आलोचना एवं अनुशीलनद्वारा ही जगत्के जीवोंका यथार्थ कल्याण होगा। तथाकथित वैज्ञानिक उन्नति शुद्ध आत्माकी विकृत अवस्थाका स्वरूपान्तरमात्र है। इसके द्वारा यथार्थ शान्ति, अभाव-पूर्ति, जन-कल्याण होना तो दूर रहा, उल्टे अशान्ति, दिनों दिन बढ़ते अभाव, बेरोजगारी, गिरती हुई नैतिकता, चरित्रहीनता, जल-वायु-खाद्य आदिका दूषण, बढ़ती हुई जनसंख्या आदि असंख्य समस्यायें बढ़ती ही जारही हैं। जिन लोगोंद्वारा इस मायाके कारागारको अपने भौतिक साधनों एवं जड़ीय प्रचेष्टाओं द्वारा परिपूर्ण एवं सुखमय बनाने की कल्पना की गई, की जा रही है या की जायगी, उन लोगोंकी ऐसी कल्पना विफल साबित हुई है, हो रही है या होकर रहेगी। एकमात्र आत्मोन्नतिकी साधना द्वारा ही यथार्थ सुख एवं शाश्वत शान्ति प्राप्त हुई है एवं भविष्यमें भी ऐसा ही होगा। बिना भगवत्सम्बन्धके इस मनुष्य-जीवन या संसारी-अस्तित्वमें सर्वत्र अन्धकार, अभाव एवं त्रितापका ही घोर ताण्डव रहेगा। भगवद्भजन द्वारा अपने एवं ईश्वर स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होने पर ही हम परिपूर्णता एवं विशुद्ध सुख प्राप्त कर सकते हैं। इस संसारकी सुख-सुविधायें एवं अभाव-पूर्तिके कार्य केवल हमें तात्कालिक रूपसे क्षणकालके लिए शान्तिका आभास-लेशमात्र प्रदान कर सकते हैं, चिरस्थायी रूपसे नहीं।

जो-जो व्यक्ति महान् सुकृतिके बलसे भगवत्पादपद्मका ऐकान्त आश्रय ग्रहण किये हैं, या करेंगे, वे लोग ही इस मायाके संसारमें रहते हुए भी असीम सुख तथा शान्ति से प्राप्त हुए हैं या प्राप्त करेंगे। उन्हें माताके गर्भमें पुनः प्रवेश नहीं करना पड़ेगा। सनातन धर्मके आचार-प्रचारकारी व्यक्ति जो सर्वोत्तम कार्य एवं जगत्का यथार्थ कल्याण कर रहे हैं, उसे यथार्थ विचारपरायण एवं सत्यप्रिय व्यक्तिमात्र ही अनुभव कर सकते हैं। शुद्ध वैष्णव लोग ही यथार्थमें निःस्वार्थ हैं। वे वास्तव सत्यग्राही, निरपेक्ष, निर्भीक, जागतिक आकांक्षारहित एवं पूर्ण-सुखके सन्धानसे परितृप्त हैं। वे धर्म-प्रचारकी आड़ लेकर कपटता या धर्म-ध्वजिता का आश्रय नहीं लेते। वे मायामुग्ध जीवोंका यथार्थ कल्याण करने के लिए सर्वदा व्याकुल एवं प्रस्तुत हैं। वे बद्ध जीवोंके यथार्थ मंगलके उद्देश्यसे असीम कष्ट, असंख्य विपत्तियों, असंख्य व्यक्तियोंकी लांछना-गंजना-उपहास-विरोधिताको सहकर भी निरवच्छिन्न एवं निरस्तकुहक (कपटता ध्वस्त) सत्यके प्रचारके लिए कृतप्रतिज्ञ एवं सतत प्रयास युक्त हैं।

कलियुगपावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीगौरचन्द्रके धाम-नाम एवं विशुद्ध प्रेम-धर्मका प्रचार जगतमें असंख्य जीवोंके निकट मुक्तकण्ठसे कर सकें तथा स्वयं निष्कपट होकर आदर्श हरिभजन कर अपने इस अनित्य संसारी जीवनको पूर्ण रूपसे सार्थक करते हुए भगवद्विमुख असंख्य जीवोंको भी उपयुक्त पात्र बनाकर उनके हृदयमें भी भगवान्के वासयोग्य स्थान बना सकें, इसके लिए सपार्षद स्वयं भगवान् श्रीगौरांगदेव एवं श्रीरूपानुग गुरुवर्ग हम जैसे तुच्छातितुच्छ दासाभिमानी चरणरेणुकणप्रार्थी आनुगत्याभिलाषी व्यक्तियोंपर अहैतुकी रूपसे प्रचुर कृपाशीर्वाद एवं शक्ति-संचार करें-- यही उनके श्रीचरणकमलोंमें हमारी ऐकान्तिक एवं सकातर प्रार्थना है।